IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

आयुर्वेदीय परम्परा में विषचिकित्सा

मंजुलता– शोध–छात्रा, संस्कृत विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार
सीता– शोध–छात्रा, संस्कृत विभाग, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार

आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम एवं वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है। जिसमें अधिकांश चिकित्सा जड़ी–बूटियों द्वारा की जाती है। जड़ी–बूटियों (ओषधियों) के परिचय हेतु संपूर्ण विश्व में आयुर्वेदीय वाङ्मय के अंतर्गत चरक, सुश्रुत एवं वाग्भट का नाम अविस्मरणीय रूप से लिया जाता है। इनके परिचय के बिना कोई भी सज्जन आयुर्वेद का पूर्ण ज्ञाता नहीं हो सकता। इसी तथ्य का पुष्ट प्रमाण हारीतसंहिता में द्रष्टव्य है–

चरकः सुश्रुतश्चैव वाग्भटश्च तथा परः।
मुख्याश्च संहिताः वाच्यास्तिस्र एव युगे युगे।।
अत्रिः कृतयुगे वैद्यो द्वापरे सुश्रुतो मतः।
कलौ वाग्भटनामा च गरिमात्र प्रदृश्यते[1]।।

आयुर्वेद सम्पूर्ण विश्व में अप्रतिहत गति से बढ़ता जा रहा है, जिसका कोई तोड़ नहीं है। सभी भिषगाचार्यों ने आयुर्वेदीय चिकित्सा के अन्तर्गत अष्टाङ्गपद्धति को स्वीकृत किया है। यह बहुत प्रसिद्ध एवं जन–जन में प्रशंसनीय है।

कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषैः।
गतमष्टाङ्गतां पुण्यं बुबुधे यं पितामहः[2] ।।

कायचिकित्सा, बालरोग, ग्रह (भूतविद्या), ऊर्ध्वाङ्ग (शालाक्य), शल्य, दंष्ट्रा (विषतन्त्र), जरा (रसायनतन्त्र) तथा वृष (वाजीकरण)– ये आठ आयुर्वेद के अंग हैं, जिनमें एक विशिष्ट अंग है– दंष्ट्रा विषचिकित्सा (अगदतन्त्र)।

अनेक बार विष से पीड़ित हो जाने पर रोगी की स्थिति मरणासन्न हो जाती है। यदि ऐसे में आयुर्वेदोक्त उपचार का प्रयोग किया जाए तो स्थिति को नियंत्रित किया जा सकता है।

सर्पलूतादिदंष्ट्रासु दारुणं जङ्गमं विषम्।
स्थावरं जङ्गमं चेति विषं प्रोक्तमकृत्रिमम्।
कृत्रिमं गरसंज्ञं तु क्रियते विविधौषधैः[3]।।

पृथ्वी पर अनेक प्रकार का विष पाया जाता है। यथा– कृत्रिम व स्वाभाविक विष। जो अनेक प्रकार के औषध द्रव्यों के मिश्रण से बनाया जाता है। वह 'गर' नामक कृत्रिम विष है तथा स्वाभाविक (अकृत्रिम) विष में जंगम व स्थावर का परिगणन किया गया है। इनमें से जो सर्प, कीट आदि में पाया जाता है, वह जंगम विष है तथा जो पेड़–पौधों में पाया जाता है, वह स्थावर विष है।

तीक्ष्णोष्णरूक्षविशदं व्यवाय्याशुकरं लघु।
विकाशि सूक्ष्ममव्यक्तरसं विषमपाकि च[4]।।

वाग्भट ने तीक्ष्ण, उष्ण आदि विष के गुणों के साथ एक विशिष्ट गुण बताया है– अपाकी; क्योंकि जठराग्नि भुक्त पदार्थों को पचा देती है, किंतु इस विष का परिपाक वह नहीं कर पाती। इसीलिए विष के

[1] हारीतसंहिता, शारीरस्थानम्, परिशिष्टाध्यायः– 7–8
[2] अष्टाङ्गसंग्रह, सूत्रस्थान– 1.10–11
[3] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.5–6
[4] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.7–8

शमन के लिए अनेकविध वमनीय, विरेचनीय योगों का प्रयोग किया जाता है। तीक्ष्ण आदि गुणों से युक्त होने के कारण यह ओजोधातु से सर्वथा विपरीत होता है तथा वात, पित्त दोष प्रधान होता है।

विषं हि देहं सम्प्राप्य प्राग् दूषयति शोणितम्।
कफपित्तानिलांश्चानु समं दोषान् सहाशयान्।
ततो हृदयमास्थाय देहोच्छेदाय कल्पते[5]।।

विष शरीर में पहुँचकर जब तक रक्त में नहीं मिलता, तब तक चिंताबाह्य होता है। रक्त में पहुँचकर यह रक्त धातु को दूषित कर देता है। उसके तत्काल बाद वह वात, पित्त, कफ दोषों को तथा उनके आशयों (पित्ताशय आदि) को प्रकुपित कर देता है, तत्पश्चात् हृदय में पहुँचकर रोगी का विनाश ही कर देता है।

विषतन्त्र में विषनाशक औषध का पारिभाषिक नाम अगद है। अगद का प्रयोग पीने के लिए, नस्य, धूप, लेपन, सेचन व अंजन के लिए किया जाता है। वाग्भट ने चन्द्रोदय, संजीवन, यापन, सूर्योदय, मृतसंजीवन, पद्मक तथा कौटिल्यदयित नामक अनेक अगदों का वर्णन किया है। इन्हीं का प्रयोग करते हुए भिन्न–भिन्न प्रकार के विष की अनेकविध चिकित्सा की जा सकती है। स्वर्ण, रजत, तांबे तथा सौवीरांजन आदि से बना अंजन एक विशिष्ट विषनाशक योग है।

गरविष–चिकित्सा–

नानाप्राण्यङ्गशमलविरुद्धौषधिभस्मनाम्।
विषाणां चाल्पवीर्याणां योगो गर इति स्मृतः[6]।।

अनेक विषैले प्राणियों के अंग या उनका मल–मूत्र, अनेक परस्पर विरोधी औषध द्रव्यों की भस्म आदि के मिश्रण अथवा अल्पशक्ति वाले विष द्रव्यों के मिश्रण को गरविष कहते हैं। गरविष पीड़ित रोगी को तत्काल वमन कराकर विषदोषहर भोज्यद्रव्य देकर हृदय की शुद्धि हो जाने पर स्वर्ण का सेवन कराना चाहिए।

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः।
लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वयोगकृतं विषम्[7]।।

स्वर्णमाक्षिक तथा स्वर्ण चूर्ण या भस्म को मात्रानुसार शर्करा एवं मधु में मिलाकर चाटने से सभी प्रकार के संयोगज विष को शांत किया जा सकता है।

नाघृतं स्रंसनं शस्तं प्रलेपो भोज्यमौषधम्।
सर्वेषु सर्वावस्थेषु विषेषु न घृतोपमम्[8]।।

सभी विषविकारों की चिकित्सा के लिए विरेचन में, लेप में तथा भोज्यपदार्थों में घी का प्रयोग करना चाहिए। विषनाश के लिए घी अमृत के समान है।

दूषीविष–चिकित्सा–

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा।
स्वभावतो वा न गुणैः सुयुक्तं दूषीविषाख्यां विषमभ्युपैति[9] ।।

विष जीर्ण (पुराना) हो जाने पर, विषनाशक औषधियों के प्रभाव से कमजोर पड़ जाने पर, दावाग्नि के कारण, तेज हवा या धूप से सूख जाने पर अथवा स्वभाववश अपने गुणों से युक्त नहीं रह पाता, तब उसे दूषीविष कहा जाता है।

प्राग्वाताजीर्णशीताभ्रदिवास्वप्नाहिताशनैः।
दुष्टं दूषयते धातूनतो दूषीविषं स्मृतम्[10]।।

उक्त दूषीविष जब पुरवा हवा के चलने पर, अजीर्ण होने पर, अधिक सर्दी पड़ने पर, आकाश में बादल छाने पर, दिन में सोने पर, अहितकर आहारों का सेवन करने पर और भी दूषित होकर रस–रक्त आदि धातुओं को दूषित कर देता है, अतः इसे दूषीविष (Slow Poison) कहा जाता है।

---

[5] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.9–10
[6] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.49–50
[7] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.56–57
[8] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.69
[9] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.33
[10] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.37

दूषीविषार्तं सुस्विन्नमूर्ध्वं चाधश्च शोधितम्।
दूषीविषारिमगदं लेहयेन्मधुनाऽप्लुतम्[11]।।

सर्वप्रथम स्वेदन कराने के बाद रोगी को वमन एवं विरेचन कराना चाहिए, उसके बाद दूषीविषारि अगद को मात्रानुसार घृत–मधु के साथ सेवन कराना चाहिए।

सर्पविष–चिकित्सा–

शिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम्।
भावितं सर्पदष्टानां पाननस्यांजने हितम्[12]।।

सफेद मरिच को 1 सप्ताह तक शिरीष के फूलों के स्वरस की भावना दें। इस प्रकार अगद तैयार हो जाने पर इसका प्रयोग पीने में, नस्य में तथा अंजन में किया जाता है, इसके प्रयोग से सभी प्रकार के सर्पदंशों में लाभ होता है।

कीटलूतादिविष–चिकित्सा–

क्षीरिवृक्षत्वगालेपः शुद्धे कीटविषापहः[13]।।

विरेचन के द्वारा उदर को शुद्ध कर लेने पर दंशस्थान पर क्षीरिवृक्ष की छाल को पीसकर लेप लगाना चाहिए।

वचा हिङ्गु विडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली।
पाठा प्रतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम्।
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत्[14]।।

वचा, हिङ्गु, विडङ्ग, सेंधा नमक, गजपिप्पली, पाठा, प्रतिविषा, व्योष (सोंठ, मरिच, पिप्पली)– इन द्रव्यों से निर्मित एवं महर्षि काश्यप द्वारा निर्दिष्ट इस अगद को पीने से सभी प्रकार के कीटविष पर विजय प्राप्त की जा सकती है।

मूषिकालर्कविष–चिकित्सा–

विरेचनं त्रिवृन्नीलीत्रिफलाकल्क इष्यते[15] ।।

यदि विरेचन की आवश्यकता हो तो निशोथ, नील की जड़, त्रिफला (आंवला, हरड़, बहेड़ा)– इन द्रव्यों को जल के साथ पीसकर कल्क बनाकर खिलाना चाहिए।

शिरोविरेचने सारः शिरीषस्य फलानि च[16] ।।

नस्य के लिए शिरीषवृक्ष की कोमल लकड़ी अथवा फलों के चूर्ण का प्रयोग किया जा सकता है।

तक्रेण शरपुङ्खाया बीजं संचूर्ण्य वा पिबेत्[17] ।।

शरपुंखा के बीजों का चूर्ण तक्र के साथ पीना चाहिए।

उपसंहार–

इस प्रकार इन सभी चिकित्सा विधियों का प्रयोग करके पीड़ित मनुष्य का जीवन बचाया जा सकता है तथा साथ ही आयुर्वेदीय परंपरा के अनुसार अपनी दिनचर्या एवं ऋतुचर्या को ठीक किया जा सकता है। आयुर्वेदोक्त चिकित्सा के सभी अंगों का यथाविधि प्रयोग करने से मनुष्य जीवन को स्वस्थ व सुखी बनाया जा सकता है।

---

[11] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 35.38
[12] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 36.72
[13] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 37.26
[14] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 37.27–28
[15] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 38.23
[16] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 38.24
[17] अष्टाङ्गहृदय, उत्तरस्थान– 38.28

वास्तव में आयुर्वेद का विश्वव्यापी प्रचार–प्रसार किया जाना चाहिए एवं धनवंतरि आदि ऋषियों की सर्वसुलभ एवं निरापद चिकित्सा–पद्धति को संपूर्ण मानव जाति के द्वारा अपनाया जाना चाहिए।

'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा[18]' ।

सन्दर्भग्रन्थ–सूची

- यजुर्वेद– परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्दसरस्वती, वेद ज्योति प्रेस, संस्करण– 2003 ई.
- अष्टाङ्गसंग्रह– कविराज अत्रिदेव गुप्त, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण– 2011 ई.
- हारीतसंहिता– पं. हरिहरप्रसाद त्रिपाठी, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, संस्करण– 2009 ई.
- अष्टाङ्गहृदय– डॉ. ब्रह्मानन्द त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, संस्करण– 2003 ई.

[18] यजुर्वेद– 7.14